भाष्यकार एवं वेद-प्रवर्तक मनीषी

वेदार्थ-निर्णयमें यास्ककी भूमिका

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

वेदका अर्थ है ज्ञान और ज्ञान वह प्रकाश है, जो मनुष्यके मन-मस्तिष्कमें छाये हुए अज्ञानान्धकारको दूर कर देता है। सृष्टिके प्रारम्भमें जीवन-यात्री मानवके मार्गदर्शक और कल्याणके लिये ईश्वरने जो ज्ञानका प्रकाश दिया, उसीका नाम है 'वेद'। निरुक्तिकी दृष्टिसे ज्ञानार्थक '**विद**' धातुसे '**घञ्**' अथवा '**अच्**' प्रत्ययका योग होनेपर 'वेद' शब्द बना है।

संस्कृत-भाषाकी वैदिक और लौकिक—इन दो शाखाओंमें वेदकी भाषा प्रथम शाखाके अन्तर्गत है। वेदकी भाषा अलौकिक है और इसके शब्दरूपोंमें लौकिक संस्कृतसे पर्याप्त अन्तर है। इसलिये वेदोंमें प्रयुक्त शब्दोंके अर्थमें अनेक भ्रान्तियाँ भी हैं, जो आज भी विद्वानोंके बीच विवादका विषय बनी हुई हैं। वेदोंकी अलौकिक भाषा सृष्टि-प्रारम्भके उस युगकी भाषा है, जब गुण-धर्मके आधारपर शब्दोंका निर्माण हो रहा था, जिसके सहस्राब्दियों बाद संस्कृतका वर्तमान लौकिक रूप या उसका व्याकरणानुमोदित स्वरूप निखर कर सामने आया और गुण-धर्म आदिके आधारपर निर्मित शब्दों या संज्ञाओंके रूढ अर्थ प्रचलित हो गये। वैदिक शब्दोंके रूढ या गूढ अर्थोंके स्पष्टीकरणके निमित्त 'निघण्टु' नामक वैदिक भाषाके शब्दकोशकी रचना हुई तथा विभिन्न ऋषियोंने 'निरुक्त' नामसे उसके व्याख्याग्रन्थ लिखे। महर्षि यास्क-प्रणीत निरुक्तके अतिरिक्त अन्य सभी निरुक्त प्रायः दुष्प्राप्य हैं। महर्षि यास्कने अपने निरुक्तमें अठारह निरुक्तोंके उद्धरण दिये हैं। इससे स्पष्ट है कि गूढ वैदिक शब्दोंकी अर्थाभिव्यक्तिके लिये अठारहसे अधिक निरुक्त-ग्रन्थोंकी रचना हो चुकी थी।

वेदार्थके निर्णयमें महर्षि यास्ककी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अर्थगूढ वैदिक शब्दोंका अर्थ प्रकृति-प्रत्यय-विभागकी पद्धतिद्वारा स्पष्ट किया है। इस पद्धतिसे अर्थके स्पष्टीकरणमें यह सिद्ध करनेका उनका प्रयास रहा है कि वेदोंमें भिन्नार्थक शब्दोंके योगसे यदि मिश्रित अर्थकी अभिव्यक्ति होती है तो गुण-धर्मके आधारपर एक ही शब्द विभिन्न संदर्भोंमें विभिन्न अर्थोंका द्योतन करता है। उदाहरणार्थ, निरुक्तके पञ्चम अध्यायके प्रथम पादमें 'वराह' शब्दका निर्वचन द्रष्टव्य है।

संस्कृतमें 'वराह' शब्द शूकरके अर्थमें ही प्रयुक्त है, किंतु वेदोंमें यह शब्द कई भिन्न अर्थोंमें भी प्रयुक्त है। जैसे—

१-'**वराहो मेघो भवति वराहारः।**'

—मेघ उत्तम या अभीष्ट आहार देनेवाला होता है, इसलिये इसका नाम 'वराह' है।

२-'**अयमपीतरो वराह एतस्मादेव। वृहति मूलानि। वरं वरं मूलं वृहतीति वा।**' '**वराहमिन्द्र एमुषम्।**'

—उत्तम-उत्तम फल, मूल आदि आहार प्रदान करनेवाला होनेके कारण पर्वतको भी 'वराह' कहते हैं।

३-'**अङ्गिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते।**'

—तेजस्वी महापुरुष उत्तम-उत्तम गुणोंको ग्रहण करनेके कारण 'वराह' कहलाते हैं।

४-'**वरं वरं वृहति मूलानि।**'

—उत्तम-उत्तम जड़ों या ओषधियोंको खोदकर खानेके कारण शूकर 'वराह' कहलाता है।

महर्षि यास्कने प्रकृति-प्रत्यय-विभाग स्पष्ट दृष्टिगत न होनेवाले परोक्ष शब्दोंके अर्थ करते समय व्याकरण-सिद्ध परम्परित अर्थके स्थानपर लोकप्रचलित अर्थ ग्रहण करनेके सिद्धान्तको भी मान्यता दी है—'**अर्थो नित्यं परीक्ष्यते न संस्कारमाद्रियते।**'

ज्ञातव्य है, शब्दोंकी व्युत्पत्तिका निमित्त तो व्याकरण होता है, परंतु उनकी प्रवृत्तिका निमित्त लोक-व्यवहार होता है, अर्थात् शब्दोंके व्यवहारका नियमन लोकसे होता है। कौन-सा शब्द किस अर्थमें प्रयुक्त होता है, इसकी व्यवस्थामें लोक-व्यवहार ही प्रधान होता है। व्याकरण तो

बादमें अनुगामी बनकर उन शब्दोंके संस्कारमें सहायक होता है।

'समुद्र' शब्द संस्कृतमें केवल सागरका अर्थबोधक है, परंतु वैदिक भाषामें विस्तीर्णका पर्यायवाची होनेसे सागर तथा आकाश—इन दोनों ही अर्थोंमें प्रयुक्त है। हिन्दीमें 'गो' शब्द गायके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है और संस्कृतमें गाय एवं इन्द्रियके अर्थमें व्यवहृत है। वेदोंमें 'गो' गाय तथा इन्द्रियके अर्थमें प्रयुक्त तो है ही, महर्षि यास्कके मतानुसार '**गौर्यवस्तिलो वत्सः**', अर्थात् गो 'यव' के एवं तिल 'वत्स'के अर्थमें भी प्रयुक्त है। इसी प्रकार संस्कृतमें 'दुहिता' शब्द लड़कीके अर्थमें प्रयुक्त है, किंतु निरुक्तके अनुसार दूरमें (पतिगृहमें) रहनेसे जिसका हित हो, वह 'दुहिता' (**दूरे हिता**) है या फिर गाय दुहनेवाली कन्या 'दुहिता' (**गवां दोग्ध्री वा**) है।

वेद-भाषाका तदनुसार अर्थ न करनेसे कितना अनर्थ होता है, इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

एकया प्रतिधापिबत् साकं सरांसि त्रिंशतम्। इन्द्रः सोमस्य काणुका॥ (ऋक्० ८। ७७। ४)

वेदोंमें इतिहास सिद्ध करनेवाले विद्वानोंने संस्कृत-व्याकरणके आधारपर इस मन्त्रका अर्थ किया है—'सोमप्रिय इन्द्र एक ही बारमें एक साथ सोमरसके तीस प्याले पी गये'; जबकि निरुक्तके निर्वचनानुसार यहाँ इन्द्र 'सूर्य' का और सोम 'चन्द्रमा' का पर्यायवाची है। कृष्णपक्षके पंद्रह दिन तथा पंद्रह रात्रि मिलाकर तीस अहोरात्र (**त्रिंशतम् सरांसि**) कहे जाते हैं। कृष्णपक्षमें सूर्य इस सोमरूप चन्द्रमाकी तीस अहोरात्रवाली कलाओंका पान कर जाता है, यह अर्थ निश्चित होता है।

इसी प्रकार निरुक्तकार महर्षि यास्कने वेदोंमें वृत्रासुरकी कल्पना न कर वेदमन्त्रमें प्रयुक्त 'वृत्र' को मेघके अर्थमें स्वीकार किया है—

तत् को वृत्रो मेघ इति नैरुक्ताः।

(निघण्टु २। १६)

अर्थात् वृत्र मेघका ही नाम है। इन्द्र शब्द तेजस्वी विद्युत्‌के अर्थमें प्रयुक्त होनेसे यहाँ यह भाव स्पष्ट होता है कि मेघद्वारा जलका धारण करना तथा विद्युत्‌के प्रहारोंसे मेघोंका भेदन कर उनसे जलवर्षण कराना ही इन्द्रका वृत्तके साथ संग्राम है, जो इन्द्र-वृत्रासुरके संग्रामकी भूमिकामें आलंकारिक वर्णनके रूपमें प्रसिद्ध हो गया है।

महर्षि यास्कके उल्लेखानुसार वेदमें भारतीय इतिहासके तत्त्व अन्तर्निहित हैं। उन्होंने अपने 'निरुक्त' में वेदमन्त्रोंके विशदीकरणके लिये ब्राह्मणग्रन्थ तथा प्राचीन आचार्योंकी कथाओंको '**इतिहासमाचक्षते**' कहकर उद्धृत किया है। वेदार्थका निरूपण करनेवाले विभिन्न सम्प्रदायोंमें ऐतिहासिकोंका भी अलग सम्प्रदाय था, इसका स्पष्ट संकेत 'निरुक्त' से होता है—'**इति ऐतिहासिकाः।**' भारतीय साहित्यमें पुराण और इतिहासको वेदका समानान्तर माना जाता है। यास्कके मतसे ऋक्संहितामें इतिहास-निरूपक तथ्योंसे युक्त मन्त्र उपलभ्य है। यथा—

'**त्रितं कूपेऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ॥ तत्र ब्रह्मेतिहास-मिश्रम्। ऋङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति।**' (निरुक्त ४। १। ६)

वेदको इतिहास माननेका निरुक्तकारका आग्रह निराधार नहीं है। निरुक्तकारके आग्रहको स्पष्ट करते हुए अर्वाचीन विद्वानोंने लिखा है कि वैदिक साहित्यमें जो सिद्धान्तरूपमें वर्णित है, उसीका व्यावहारिक रूप 'रामायण' और 'महाभारत'में उपलब्ध होता है। वैदिक धर्मके अनेक अज्ञात तथ्योंको जाननेमें 'रामायण' और 'महाभारत' हमारे लिये प्रकाश-स्तम्भकी भूमिका निबाहते हैं। ये दोनों इतिहास-ग्रन्थ हैं। इतिहासके द्वारा वेदार्थके उपबृंहणका यही रहस्य है। इतिहास और पुराणोंमें जो सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, वे वेदके ही हैं।

वेदके यथार्थ अर्थको समझनेके लिये इतिहास-पुराणका अध्ययन आवश्यक है। महर्षि व्यासका स्पष्ट कथन है कि वेदका उपबृंहण इतिहास और पुराणके द्वारा होना चाहिये; इतिहास-पुराणसे अनभिज्ञ लोगोंसे वेद सदा भयत्रस्त रहता है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

अर्थात् 'इतिहास और पुराणसे वेदको समृद्ध करना चाहिये। वेदको अल्पश्रुत व्यक्तिसे बराबर इस बातका भय बना रहता है कि यह कहीं मुझपर प्रहार न कर दे।' वेदको इसी भयसे विमुक्त करनेके लिये यास्कने वेदार्थ-निरूपणका ऐतिहासिक प्रयास किया है।

महान् सर्ववेदभाष्यकार श्रीसायणाचार्य

(डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा)

वेद-भाष्यकारोंमें आचार्य सायणका स्थान सर्वोपरि है। वे वैदिक जगत्‌के सूर्य हैं। उनकी प्रसिद्धि प्रखर प्रतिभासम्पन्न एवं उत्कृष्ट मेधा-युक्त महान् वेद-भाष्यकारके रूपमें सर्वविदित है। वैदिक विद्वानों तथा भाष्यकारोंमें पाण्डित्य तथा विवेचन-कौशलकी दृष्टिसे उनका स्थान अद्वितीय है। वेदार्थ स्पष्ट करते समय जिस तथ्यकी विवेचना उन्होंने अपने भाष्योंमें की है, उसे युक्ति-युक्त प्रमाणसमन्वित शास्त्रोक्त-शैलीमें इतने स्पष्टरूपसे विवेचित किया है कि उस विषयमें फिर पाठकके लिये अन्य कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता है। वेदार्थ-निरूपणमें उन्होंने षडङ्ग—शिक्षा, कल्पसूत्र, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष आदिके साथ संदर्भ स्पष्ट करने-हेतु पौराणिक कथाओंका भी आश्रय लिया है, जिससे उनका भाष्यकार्य परम प्रामाणिक एवं सटीक बन पड़ा है। व्याकरणद्वारा शब्दोंकी व्युत्पत्ति एवं सिद्धि करने तथा स्वराङ्कन करनेकी उनकी पद्धति बड़े-बड़े व्याकरणाचार्योंको भी आश्चर्यचकित करनेवाली है। आधुनिक, पाश्चात्त्य तथा तदनुगामी भारतीय वेदभाष्यकारोंकी भाँति उन्होंने अपने पूर्ववर्ती भाष्यकारोंकी उपेक्षा नहीं की है, बल्कि स्कन्दस्वामी तथा वेंकटमाधव आदि पूर्ववर्ती भाष्यकारोंके भाष्योंका सारांश भी यथास्थान उद्धृत कर दिया है; जिससे उनके महान् परम्परागत वैदिक ज्ञानका पता चलता है।

याज्ञिक विधानका पूर्ण परिचय

शास्त्रोंके अनुसार यज्ञके चार प्रमुख ऋत्विक् होते हैं—होता, उद्‌गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। होताका वेद ऋग्वेद, उद्‌गाताका सामवेद, अध्वर्युका यजुर्वेद और ब्रह्माका अथर्ववेद है। वस्तुतः याज्ञिक विधान वेदकी आत्मा है और इसीलिये यज्ञको वेदका प्रधान विषय माना जाता है। यही कारण है कि याज्ञिक विधानके सम्यक् ज्ञानके बिना कोई वेदका भाष्य करनेमें सफल नहीं हो सकता है। आचार्य सायणको याज्ञिक विधानका पूर्ण ज्ञान था। उनका भाष्य इतना प्रामाणिक, युक्ति-युक्त तथा शास्त्रानुकूल बन गया कि उसमें कहीं भी लेशमात्र संशोधनकी गुंजाइश नहीं दिखायी पड़ती। इसीलिये उन्होंने वेदके प्रत्येक सूक्तकी व्याख्या करनेसे पूर्व ही उस सूक्तके ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग आदिका ऐसा प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है, जिससे सूक्तगत मन्त्रोंकी प्रसंगानुकूल व्याख्या करनेका मार्ग प्रशस्त होता है। सूक्तमें निहित यदि कोई ऐतिहासिक आख्यान अथवा अन्तःकथा अर्थनिरूपणमें आवश्यक है तो उसका भी सोपपत्तिक वर्णन उन्होंने प्रस्तुत किया है। उनके भाष्योंका उपोद्घात (भाष्य-भूमिका) तो वैदिकदर्शनसे परिचित होनेके लिये ऐसा सुव्यवस्थित राजमार्ग है, जिसपर चलकर अनेक जिज्ञासुओं और देश-विदेशके विद्वानोंको वेदविद्याका तथ्यपरक ज्ञान प्राप्त हुआ है।

इसी कारण प्रसिद्ध पाश्चात्त्य विद्वान् मैक्समूलरने आचार्य सायणको वेदार्थका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये 'अन्धेकी लकड़ी बताया है।' एच० एच० विल्सनद्वारा उनके भाष्यका अनुसरण करते हुए ऋग्वेदका अंग्रेजी अनुवाद करना भी यही स्पष्ट करता है कि यदि आचार्य सायणके विविधार्थ-संकलित भाष्यरत्न नहीं होते तो किसी भी भारतीय अथवा पाश्चात्त्य विद्वान्‌का वेदोंके अगम्य ज्ञानदुर्गमें प्रवेश नहीं हो सकता था।

जीवन-परिचय

भारतीय संस्कृतिके महान् उपासक, वैदिक दर्शनके मर्मज्ञ तथा सर्ववेदभाष्यकार सायणाचार्यकी जन्मतिथि आदिके विषयमें निश्चित जानकारी न होना बड़े दुःखका विषय है। प्रसिद्ध विद्वानोंके द्वारा किये गये अनुसंधानके आधारपर उनके जीवन-परिचय तथा भाष्य-कार्योंपर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है। उनका जन्म तुंगभद्रा नदीके तटवर्ती हम्पी नामक नगरमें संवत् १३२४ विक्रमीमें हुआ था। उनके पिताका नाम मायण, माताका नाम श्रीमती तथा दो भाइयोंका नाम क्रमशः माधव और भोगनाथ था। उनके बड़े भाई माधवाचार्य विजयनगर-हिन्दू-साम्राज्यके संस्थापकोंमें थे। यह हिन्दू-साम्राज्य लगभग तीन सौ वर्षोंतक मुस्लिम राजाओंसे लोहा लेता

रहा। माधवाचार्यने संवत् १३९२ विक्रमीके लगभग विजयनगरके सिंहासनपर महाराज वीर बुक्कको अभिषिक्त कर और स्वयं मन्त्री बनकर कई मुस्लिम राज्योंको विजयनगर साम्राज्यके अधीन किया था। वे वीर होनेके साथ-साथ महान् विद्वान् भी थे। 'सर्वदर्शन-संग्रह', 'पराशरमाधव', 'पञ्चदशी', 'अनुभूतिप्रकाश' तथा 'शंकरदिग्विजय' आदि उनके महान् ग्रन्थोंसे पता चलता है कि माधवाचार्य असाधारण प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे। आचार्य सायणके छोटे भाई भी प्रसिद्ध विद्वान् थे। उनकी बहनका नाम 'सिंगले' था, जिसका विवाह रामरस नामक ब्राह्मणके साथ हुआ था। इस प्रकार उनका परिवार लब्धप्रतिष्ठित विद्वानों तथा आदर्श महापुरुषोंको जन्म देनेवाला था।

विद्या-गुरु

आचार्य सायण भारद्वाज गोत्री कृष्णयजुर्वेदी ब्राह्मण थे। उनकी वैदिक शाखा तैत्तिरीय थी और सूत्र बौधायन था। उनके तीन गुरु विद्यातीर्थ, भारतीतीर्थ तथा श्रीकृष्णाचार्य उस समयके अत्यन्त प्रख्यात एवं आध्यात्मिक ज्ञानसम्पन्न महापुरुष थे। ये तीनों महापुरुष न केवल आचार्य सायण तथा उनके दोनों भाइयोंके विद्या-गुरु थे, वरन् तत्कालीन विजयनगरके हिन्दू राजाओंके भी आध्यात्मिक गुरु थे। स्वामी विद्यातीर्थ परमात्मतीर्थके शिष्य थे। वे भगवान् आद्य शंकराचार्यजी महाराजद्वारा स्थापित शृंगेरीपीठके सुप्रसिद्ध आचार्य थे। इन्हींके करकमलोंसे संन्यास ग्रहण कर माधवाचार्य विद्यारण्यमुनिके नामसे विख्यात हुए और उनके पश्चात् शृंगेरीपीठके आचार्यपदपर सुशोभित हुए। माधवाचार्य एवं सायणाचार्य स्वामी विद्यातीर्थके विशेष ऋणी थे तथा हिन्दूधर्म एवं वैदिक संस्कृतिके प्रति इन दोनों भाइयोंमें जो अपार श्रद्धा, प्रेम तथा समर्पण था, उसका श्रेय स्वामी विद्यातीर्थको ही है। इसीलिये अपने वेदभाष्योंके प्रारम्भमें मङ्गलाचरण करते हुए आचार्य सायणने उन्हें साक्षात् महेश्वर बताकर उनकी वन्दना की है—

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

महान् वैदिक विद्वान्

आचार्य सायण संस्कृत-भाषा तथा वैदिक साहित्यके महान् विद्वान् थे। उनके ऋग्वेदके प्रथम एवं द्वितीय अष्टकके भाष्यको देखनेसे पता चलता है कि उनका संस्कृत-व्याकरणका ज्ञान असाधारण था। मीमांसा-शास्त्रकी विशेष शिक्षा ग्रहण करनेके कारण वे अपने युगके मीमांसा-दर्शनके अद्वितीय विद्वान् थे। मीमांसा-शास्त्रका उनका उच्च कोटिका ज्ञान उनके भाष्यग्रन्थोंमें देखनेको मिलता है। उनके ऋग्वेद-भाष्यके उपोद्घातको पढ़नेसे पाठकोंको सहज ही उनके मीमांसा-शास्त्रके उत्कृष्ट ज्ञानका पता चल जाता है। उन्होंने ऋग्वेद, कृष्ण एवं शुक्ल-यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदकी प्रमुख संहिताओं, ब्राह्मणों तथा आरण्यकोंका गुरु-परम्परासे विधिपूर्वक अध्ययन एवं मनन किया था। तभी वह इस समस्त वैदिक साहित्यके पूर्ण अधिकारी विद्वान् बनकर इतने उच्च कोटिके भाष्य-प्रणयनका कार्य कर सके, जिसके आलोकसे आज छः शताब्दियाँ व्यतीत होनेपर भी समस्त वैदिक जगत् आलोकित है और आगे भी शताब्दियोंतक आलोकित रहेगा। वस्तुतः उनकी अवतारणा ईश्वरीय विभूतिके रूपमें वेदभाष्य-प्रणयनके लिये हुई थी। इसीलिये उनका समस्त बाल्यकाल इसी महान् लक्ष्य-प्राप्तिकी तैयारीमें व्यतीत हुआ था। संस्कृत-साहित्यकी प्रत्येक विद्यासे परिचित होनेके कारण एक महान् वैदिक विद्वान्के रूपमें आचार्य सायणका आविर्भाव भारतीय इतिहासकी अविस्मरणीय घटना है। अतः उनके वेदभाष्य विद्वानोंके गलेके हार बने हुए हैं।

आदर्श गार्हस्थ्य-जीवन

सायणाचार्य आदर्श गृहस्थ थे। उनका गार्हस्थ्य-जीवन अत्यन्त सुखमय था। उनके कम्पण, मायण तथा शिंगण नामके तीन पुत्र थे। तीनों पुत्रोंका लालन-पालन करते हुए उनके बीचमें वे महान् आनन्दका अनुभव करते थे। उनका पारिवारिक जीवन वस्तुतः कितना सुखमय था? इसकी कल्पना उसीको हो सकती है, जो अपने परिवारमें आनन्दपूर्वक रहता हो। घरके बाहर मन्त्रीके महत्त्वपूर्ण एवं दायित्वपूर्ण कार्योंमें व्यस्त रहना और घर आते ही अपने पुत्रोंके प्रेममय आलाप एवं

पठन-पाठनको सुनकर प्रसन्न होनेका सौभाग्य बिरले व्यक्तियोंको ही प्राप्त होता है। वह अपने पुत्रोंको संगीतशास्त्र, काव्य-रचना और वेद-पाठमें दक्षता प्राप्त करनेकी शिक्षा देते रहते थे। इसीके फलस्वरूप ज्येष्ठ पुत्र कम्पण संगीतशास्त्री, मध्यम पुत्र मायण साहित्यकार तथा कनिष्ठ पुत्र शिंगण वैदिक विद्वान् हुए।

कुशल मन्त्री

आचार्य सायण अपनी ३१ वर्षकी आयुमें एक कुशल राज्य-प्रबन्धक एवं मन्त्रीके रूपमें हमारे सामने आते हैं। वि० सं० १४०३ (सन् १३४६)-में वे हरिहरके अनुज कम्पण राजाके मन्त्री बने और ९ वर्षतक उन्होंने बड़ी कुशलतासे राज्य-संचालनका कार्य किया। कम्पण राजाकी मृत्यु होनेपर उनका एकमात्र पुत्र संगम (द्वितीय) अबोध बालक था। अतः उसकी शिक्षा-दीक्षाका समस्त भार प्रधान मन्त्रीपदपर आसीन सायणाचार्यने जिस तत्परता, लगन तथा ईमानदारीसे वहन किया, उसका ही यह परिणाम हुआ कि संगम नरेश राजनीतिमें अत्यन्त पटु होकर आदर्श राजाके रूपमें विख्यात हुए। उनके शासनकालमें प्रजाको सब प्रकारकी सुख-समृद्धि एवं शान्ति प्राप्त थी। वस्तुतः इसका श्रेय सायणाचार्यको ही था। वे केवल कुशल मन्त्री और विद्वान् ही नहीं थे, बल्कि अनेक युद्धोंमें कुशलतापूर्वक युद्ध-संचालन कर उन्होंने महान् विजयश्री प्राप्त की थी। ४८ वर्षकी आयु होनेपर उन्होंने लगभग १६ वर्षों—वि० सं० १४२१ से १४३७ (सन् १३६४ से १३८०) तक विजयनगरके प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट् बुक्कके यहाँ मन्त्रीके उत्तरदायी पदपर रहते हुए शासन-प्रबन्धका कार्य सुचारुरूपसे किया।

वैदिक ज्ञानालोक-दाता

इसी कालावधिमें उन्होंने वेदभाष्य-रचनाका अपना सर्वश्रेष्ठ तथा विश्वविख्यात कार्य किया। उन्होंने वेदभाष्य-रचनाका महान् कार्य अपने आश्रयदाता, परम धार्मिक एवं वेदानुरागी महाराज बुक्ककी आज्ञासे सम्पादित कर वैदिक ज्ञानका जो आलोक अपने वेदभाष्योंके रूपमें विश्वको प्रदान किया था, वही वैदिक ज्ञानका आलोक आज भी एकमात्र सम्बल बना हुआ है। बुक्क महाराजके स्वर्गवासी होनेपर उनके पुत्र महाराज हरिहरके वे वि० सं० १४३८ से १४४४ (सन् १३८१—८७ ई०) तक मन्त्री रहे। वि० सं० १४४४ (सन् १३८७ ई०)-में ७२ वर्षकी आयुमें वेदभाष्योंके अमर प्रणेता, प्रतिभाशाली साहित्यकार, राजनीतिके धुरंधर विद्वान्, शासन-प्रबन्धके सुयोग्य संचालक, महान् दार्शनिक तथा युद्धभूमिमें शत्रुओंका दमन करनेवाले वीरशिरोमणि एवं हिन्दू साम्राज्यके संस्थापक सुविख्यात मनीषी सायणाचार्यने धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, शिक्षा, दर्शन, समाज तथा राजनीतिके विभिन्न क्षेत्रोंको अपने महान् कार्योंसे सुसमृद्ध कर अपनी जीवनलीलाका संवरण करते हुए वैकुण्ठवास किया। अहो! कितना महान् था उनका पावन जीवन-चरित्र!

अमर साहित्य-प्रणयन

वेदोंके गूढ ज्ञानसे लेकर पुराणोंके व्यापक पाण्डित्यतक, अलंकारोंके विवेचनसे पाणिनि-व्याकरणके उत्कृष्ट अनुशीलनतक, यज्ञमीमांसाके अन्तःपरिचयसे लेकर आयुर्वेद-जैसे लोककल्याणकारी शास्त्रके व्यावहारिक ज्ञानतक सर्वत्र आचार्य सायणका असाधारण पाण्डित्य सामान्य जनताके लिये उपकारक तथा प्रतिभाशाली विद्वानोंके लिये विस्मयपूर्ण आदरका पात्र बना हुआ है। डॉ० ऑफ्रेक्टके अनुसार उन्होंने लगभग तीस वर्षकी आयुसे लेकर अपने जीवनके अन्तिम कालतक लगातार अटूट परिश्रम एवं अदम्य उत्साहसे साहित्य-साधना करते हुए छोटे-बड़े पचासों ग्रन्थोंकी रचना की। उनके ये सात ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं—(१) सुभाषित-सुधानिधि, (२) प्रायश्चित्त-सुधानिधि, (३) अलंकार-सुधानिधि, (४) आयुर्वेद-सुधानिधि, (५) पुरुषार्थ-सुधानिधि, (६) यज्ञतन्त्र-सुधानिधि और (७) धातुवृत्ति। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने वेदभाष्योंके अतिरिक्त उपर्युक्त ग्रन्थोंकी रचना कर अपने बहु-आयामी व्यक्तित्वका परिचय दिया था।

वेदभाष्य-प्रणयन

सायणाचार्यका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है उनके द्वारा वेदभाष्योंका प्रणयन किया जाना। उनके ये वेदभाष्य ही उनकी कमनीय कीर्तिको फैलानेमें आज भी समर्थ हैं और भविष्यमें भी समर्थ रहेंगे। यही कारण

है कि भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानोंमें किसी एकाधको छोड़कर शेष सभी मूर्धन्य वैदिक विद्वानोंने वेदार्थके यथार्थ ज्ञानके लिये स्वयंको सायणका ऋणी माना है। सोलहवीं शताब्दीमें प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् महीधराचार्य और उनके पूर्ववर्ती उव्वटाचार्य आदि शुक्लयजुर्वेदकी माध्यन्दिनी-शाखापर भाष्य-रचना करनेमें आचार्य सायणके ऋणी रहे। आधुनिक युगमें ऋग्वेदके श्रीसायण-भाष्यके प्रथम सम्पादक प्रो० मैक्समूलरके अनुसार वेदार्थ जाननेमें आचार्य सायण अन्धेकी लकड़ी हैं। प्रसिद्ध सनातनधर्मी विद्वान् तथा शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी और 'सनातनधर्मालोक' नामक महान् ग्रन्थके प्रणेता पं० श्रीदीनानाथ शास्त्रीजीकी प्रेरणासे विद्वानोंद्वारा रचित वेदभाष्योंका आधार आचार्य सायणके भाष्य ही हैं। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० श्रीज्वालाप्रसाद मिश्र तथा पं० श्रीरामस्वरूप शर्मा आदिने जो वेदभाष्य लिखे हैं, उन सबके आधार आचार्य सायणके भाष्य ही हैं। वेदका वास्तविक अर्थ जाननेके लिये 'सायणकी ओर लौटो' का सिद्धान्त प्रस्तुत करनेवाले वर्तमान शताब्दीके महान् मनीषी विख्यात वेदोद्धारक धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने अपने विश्वविख्यात महान् ग्रन्थ 'वेदार्थपारिजात'-में भारतीय और पाश्चात्त्य वैदिक विद्वानोंके विचारोंकी समीक्षा करते हुए आचार्य सायणके वेदभाष्योंको सर्वोत्कृष्ट तथा परम प्रामाणिक सिद्ध कर यह बताया है कि उनके भाष्योंकी सहायताके बिना वैदिक ज्ञानके दुर्गमें प्रवेश करना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है। इतना ही नहीं, पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजीका यजुर्वेद-भाष्य सायणाचार्यके भाष्योंके अनुसार ही तैयार हुआ प्रतीत होता है। पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजके वैदिक ग्रन्थोंसे प्रेरित होकर उनके दिव्य सन्देशको आगे बढ़ानेके उद्देश्यसे इस लेखका लेखक पिछले लम्बे समयसे आचार्य सायणके ऋग्वेद-भाष्यका हिन्दी अनुवाद लिखनेमें लगा हुआ है, जिससे हिन्दीभाषी सामान्यजन भी सायण-भाष्यसे लाभान्वित हो सके।

वेदभाष्य-निरूपण

'वेद' शब्दका प्रयोग संहिता और ब्राह्मणके समुदायके लिये किया जाता है। 'वेद' शब्द किसी एक ग्रन्थविशेषका बोध न कराकर मन्त्र-ब्राह्मणात्मक शब्दराशिका बोध कराता है, अत: वेदके दो भाग माने जाते हैं। मन्त्रभाग (संहिता) और ब्राह्मणभाग—इन दोनों भागोंके अन्तर्गत आरण्यक तथा उपनिषद् भी हैं। इस प्रकार मन्त्र (संहिता), ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—इन चारोंकी 'वेद' संज्ञा है। इन चारोंमें सायणने मन्त्र (संहिता), ब्राह्मण और आरण्यकपर ही अपने विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखे हैं। उपनिषदोंपर भगवान् आद्य जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजीके उत्कृष्ट भाष्य उपलब्ध होनेके कारण सम्भवत: उन्होंने उपनिषदोंपर भाष्य लिखना आवश्यक न समझा हो। अत: वेदके कर्मकाण्ड-सम्बन्धी भाग—मन्त्र, ब्राह्मण एवं आरण्यकपर उन्होंने अपने प्रामाणिक भाष्य लिखकर आचार्य शंकरके महान् कार्यको आगे बढ़ाया और वैदिक कर्मकाण्डियोंका मार्ग प्रशस्त किया।

भाष्य-कार्य-समालोचन

आचार्य सायणने ऋग्वेद, शुक्लयजुर्वेद (काण्व-शाखा), कृष्णयजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—इन पाँचों संहिताओं तथा ऐतरेय, तैत्तिरीय, ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद्, संहितोपनिषद्, वंश, शतपथ और गोपथ नामक उक्त पाँचों संहिताओंके बारह ब्राह्मणों एवं तैत्तिरीय तथा ऐतरेय नामक कृष्णयजुर्वेद और ऋग्वेदके दो आरण्यकोंपर अपने विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखे हैं। चारों वेदोंकी उपलब्ध संहिताओं, उनके ब्राह्मणों तथा आरण्यकोंपर भाष्य लिखकर उन्होंने वैदिक जगत्का महान् उपकार किया है। उन्होंने शुक्लयजुर्वेद और सामवेदके समस्त ब्राह्मणोंपर भाष्य-रचना की। शुक्लयजुर्वेदके सौ अध्यायोंवाले शतपथ-ब्राह्मणका उनका भाष्य वैदिक कर्मकाण्डका विश्वकोश है। सामवेदके आठ उपलब्ध होनेवाले ब्राह्मणोंपर उनके भाष्य वैदिक दर्शनके अनूठे उदाहरण हैं। ऋग्वेदकी शाकल-संहितापर उनका जो भाष्य मिलता है, वह भारतीय चिन्तन-मनन एवं ज्ञानका अथाह समुद्र है। उसके समक्ष पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती सभी भाष्य अपूर्ण तथा फीके प्रतीत होते हैं। उसीका आश्रय लेकर उत्तरवर्ती भाष्यकारोंने

अपने-अपने भाष्योंके प्रणयनका प्रयास किया है। ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यकपर उनके भाष्य इतने उत्कृष्ट एवं प्रामाणिक हैं कि विद्वान् उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। कृष्णयजुर्वेदकी तैत्तिरीय संहिता, उसके ब्राह्मण तथा आरण्यकपर उनके भाष्य यज्ञ-सम्बन्धी महान् ज्ञानके परिचायक हैं। अथर्ववेदकी संहिता और उसके गोपथ ब्राह्मणपर भाष्य लिखकर उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभाका परिचय दिया है।

आचार्य सायणके इस महान् वेदभाष्य-कार्यको देखनेसे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने वैदिक साहित्यके बहुत बड़े भागके ऊपर अपने विस्तृत तथा प्रामाणिक भाष्य लिखकर इस क्षेत्रमें अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया है। इसीलिये न तो उनके समान कोई पूर्ववर्ती भाष्यकारोंमें हुआ और न ही उत्तरवर्ती भाष्यकारोंमें अबतक हुआ तथा न ही भविष्यमें होगा। वस्तुतः उनका कार्य—'**न भूतो न भविष्यति**' की कहावतको चरितार्थ करता है। आजतक किसी भारतीय अथवा पाश्चात्त्य विद्वान्ने इतने अधिक वैदिक ग्रन्थोंपर ऐसे सारगर्भित एवं प्रामाणिक भाष्य नहीं लिखे हैं और भविष्यमें भी कोई लिखनेवाला नहीं है। यही कारण है कि वह वैदिक भाष्यकारोंके मध्यमें न केवल आज, बल्कि आगे भी सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते रहेंगे। उनसे अधिक कार्य होना तो दूर रहा, उनके बराबर कार्य होना भी असम्भव प्रतीत होता है। अतः पाश्चात्त्य विद्वान् प्रो० मैक्समूलरका यह कथन अत्युक्ति नहीं है कि 'आचार्य सायणके भाष्य-ग्रन्थ वैदिक विद्वानोंके लिये अन्धेकी लकड़ीके समान हैं।' महान् भारतीय मनीषी स्वामी श्रीकरपात्रीजीके द्वारा वैदिक विद्वानोंको सायणकी ओर लौटनेका परामर्श देनेसे भी यही सिद्ध होता है कि आचार्य सायणका वेदभाष्य-कार्य अतुलनीय—अद्वितीय है।

व्यक्तित्व एवं कृतित्वका मूल्यांकन

सायणाचार्यका महान् व्यक्तित्व इस धराधामपर वेदोद्धारके पावन कार्यको अपने कृतित्वद्वारा सम्पन्न करनेके लिये ईश्वरीय विभूतिके रूपमें अवतरित हुआ था। वस्तुतः वे बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे। इसीलिये तत्कालीन महाराज बुक्कने उन्हें सनातन संस्कृतिके सर्वोत्तम रत्नस्वरूप वेदोंके भाष्यका महान् दायित्व सौंपा था। उनका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास इतना उच्च कोटिका था कि उन्हें सर्वगुणसम्पन्न महापुरुष कहना अत्युक्ति नहीं होगी। वही एकमात्र ऐसे वेदभाष्यकार हैं, जिन्हें विद्वान् सर्ववेदभाष्यकार कहकर गौरवका अनुभव करते हैं। कहाँ तो सतत शास्त्राभ्याससे विकसित ज्ञानद्वारा वैदिक सिद्धान्तोंकी मीमांसा करनेमें प्रगाढ प्रवीणता और कहाँ लौकिक व्यवहारके बारम्बार निरीक्षणसे उत्पन्न विपुलराज्य-कार्य-संचालनमें समर्थ राजनीतिमें आश्चर्यजनक कुशलता—इन दोनों परस्पर-विरोधी प्रतिभाओंका मणिकाञ्चन-जैसा संगम उनके व्यक्तित्वमें देखकर किसे आश्चर्य नहीं होगा?

शास्त्र और शस्त्र दोनोंमें ही उनकी समान पारंगतता देखकर यही कहना समीचीन होगा कि उन-जैसा महान् व्यक्तित्व न हुआ है और न होगा। उनकी समस्त वैदिक एवं लौकिक साहित्यसे सम्बन्धित कृतियाँ मानवजातिकी अमूल्य निधि हैं। उनके भाष्य-ग्रन्थ सनातन संस्कृति, धर्म, अध्यात्म एवं शिक्षाके विश्वकोष हैं। उनके महान् व्यक्तित्व एवं कृतित्वका अवलोकन करनेपर यही मुखसे निकलता है कि धन्य हैं महान् सर्ववेदभाष्यकार सायणाचार्य! धन्य हैं उनकी विलक्षण वीरता एवं अद्भुत कृतियाँ!! धन्य है उनका हिन्दू-साम्राज्य-स्थापनका यशस्वी कार्य!!!

सन् १९९९ के प्रसिद्ध धार्मिक मासिक पत्र 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित होनेवाले '**वेद-कथाङ्क**' के प्रकाशनके अवसरपर हम आचार्य सायणके श्रीचरणोंमें अपनी विनम्र भावना अर्पित करते हुए श्रीमन्नारायणसे उनके दिव्य सन्देशको आगे बढ़ानेकी प्रार्थना करते हैं।

कुछ प्रमुख भाष्यकारोंकी संक्षिप्त जीवनियाँ

मध्वाचार्य (स्वामी आनन्दतीर्थ)

स्वामी आनन्दतीर्थका विशेष प्रसिद्ध नाम मध्वाचार्य है। ये मध्व एवं गौडीय दोनों सम्प्रदायके प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका जन्म सन् ११९९ में उडुपीनगर (कर्नाटक)-में हुआ था। इनकी माताका नाम वेदवती था। इनके गुरुका नाम महात्मा अच्युततीर्थ महाराज था। इन्होंने इन्हींसे वेद-वेदान्तका अध्ययन किया था और सारे भारतमें भ्रमण कर अपने ज्ञान तथा वैदिक सिद्धान्तोंका प्रचार किया था। इनके लिखे हुए ग्रन्थ जो 'प्रबन्धग्रन्थ'के नामसे हैं, कई हैं। जिसमें ऋग्वेदका भाष्य और वेदोंपर आधृत ब्रह्मसूत्रका अणुभाष्य बहुत प्रसिद्ध है। इनके वेदभाष्यपर अनेक अनुसंधान विश्वविद्यालयोंमें हो रहे हैं और इनका मत द्वैतमतके नामसे प्रसिद्ध है। इनके मतका मुख्य सार भगवान् श्रीहरिकी उपासना ही सर्वोपरि है और भगवान् ही परमतत्त्व हैं। इनका निर्वाण बदरिकाश्रममें सन् १२७८ में हुआ था।

उव्वट

इनके पिताका नाम वज्रट था, जो बहुत विद्वान् थे। ये गुजरात-प्रान्तके आनन्दपुर नगरके निवासी थे। इन्होंने शुक्लयजुर्वेदके वाजसनेयिसंहितापर विस्तृत भाष्य लिखा है। ये मालवाके राजा भोजके दरबारी थे। यजुः-प्रातिशाख्य नामके वैदिक ग्रन्थपर इनका भाष्य है।

महीधर

ये काशीके प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनका समय प्रायः १२वीं शताब्दी है। इनके यजुर्वेदके भाष्यका नाम 'वेदप्रदीप' है, जो सर्वाधिक विस्तृत और सरलतम भाष्य है। इसमें इन्होंने सभी वैदिक ग्रन्थों, श्रौतसूत्रों और ब्राह्मणग्रन्थोंका आश्रय लेकर यज्ञकी पूरी प्रक्रिया दी गयी है। इन्होंने उव्वट और सायण आदिके भाष्योंको पढ़कर अत्यन्त सरल और परिष्कृत भाष्यका निर्माण किया है।

वेङ्कट माधव (विद्यारण्य)

इनका ऋग्वेदका भाष्य बहुत प्रसिद्ध है। देवराजयज्वाका जो निरुक्त—'निघण्टुभाष्य' है, उसमें आचार्य वेङ्कट माधवका सादर उल्लेख प्राप्त होता है। इनके पिताका नाम वेङ्कटार्य था, जो ऋग्वेदके अच्छे ज्ञाता थे। माताका नाम सुन्दरी था। इनके पुत्रका नाम वेङ्कट अथवा गोविन्द था। ये कावेरी नदीके दक्षिण तटपर चोलदेशके उत्तरभागमें स्थित गोमान् गाँवके निवासी थे।

प्रभाकर भट्ट

ये केरल प्रान्तके निवासी थे। ये तत्त्वज्ञानी और न्यायदर्शनके बहुत बड़े विद्वान् थे। इनका मत प्रभाकर मतके नामसे प्रसिद्ध था।

शबरस्वामिन्

ये काश्मीरके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम दीप्तस्वामी था। इन्होंने वेदोंके साथ-साथ मीमांसा-दर्शनपर भाष्यकी रचना की, जो 'शाबर-भाष्य' के नामसे विश्वमें विख्यात है। इनके विषयमें यह श्लोक विद्वानोंकी परम्परामें बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है—

ब्राह्मण्यामभवद् वराहमिहिरो ज्योतिर्विदामग्रणीः
राजा भर्तृहरिश्च विक्रमनृपः क्षत्रात्मजायामभूत्।
वैश्यायां हरिचन्द्रवैद्यतिलको जातश्च शंकुः कृती
शूद्रायाममरः षडेव शबरस्वामिद्विजस्यात्मजाः॥

जयंत भट्ट

इनका समय दशवीं शताब्दीके आस-पास माना जाता है। वाचस्पति मिश्र आदि परवर्ती विद्वानोंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें सादर इनका उल्लेख किया है। इन्होंने अनेक बौद्ध एवं जैन विद्वानोंसे शास्त्रार्थ किया था। न्याय-दर्शनके सूत्रोंपर 'न्यायमञ्जरी' नामकी इनकी टीका बहुत प्रसिद्ध है। इनका मुख्य ग्रन्थ 'अथर्वण-रक्षा' है, जिसमें इन्होंने अथर्ववेदकी महत्तापर प्रकाश डाला है।

मण्डन मिश्र

आचार्य मण्डन मिश्र मण्डला ग्रामके निवासी थे, जिसे आजकल 'माहेश्वर' कहते हैं। इसे माहिष्मतीपुरी भी कहते थे। ये बहुत बड़े संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित और मीमांसा तथा चारों वेदोंके मर्मज्ञ थे। आचार्य शंकर जब बौद्धोंको परास्त करनेके लिये दिग्विजय-यात्रामें निकले थे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि वेदोंके प्रकाण्ड विद्वान् कुमारिल भट्ट हैं, अतः वे उन्हें खोजते हुए प्रयाग पहुँचे। उस समय कुमारिल भट्ट प्रयागमें आत्मदाहके लिये बैठे

थे। शंकराचार्यने उन्हें बहुत रोका, पर वे नहीं माने, उन्होंने और कहा कि जिन बौद्ध गुरुओंसे हमने शिक्षा ली थी, उन्हें ही हमने शास्त्रार्थमें परास्त कर दिया, अतः मुझे अत्यन्त मानसिक ग्लानि हो गयी। अतः आप मेरे शिष्य मण्डन मिश्रसे सहयोग प्राप्त करें। इसपर शंकराचार्यजी मण्डला पहुँचे, रास्तेमें कुछ स्त्रियाँ कुएँसे पानी भर रही थीं। वहाँ उन्होंने मण्डन मिश्रके घरका पता पूछा। उस गाँवकी स्त्रियाँ भी इतनी विदुषी थीं कि बोल पड़ीं—

श्रुतिः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं
कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा
अवेहितं मण्डनमिश्रधाम॥
जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्
कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा
अवेहितं मण्डनपण्डितौकः॥

भाव यह है कि जिसके दरवाजेपर बैठे हुए शुक-शुकी पिंजरेमें स्थिर होकर—'वेद अधिक प्रामाणिक हैं? अथवा धर्मशास्त्र कहाँतक प्रामाणिक हैं? ईश्वर सच्चा है, संसार नश्वर है या सत्य?—इन विषयोंपर कठिन शास्त्रार्थ करते हैं,' उसे ही आप मण्डन पण्डितका घर समझें। आचार्य जब वहाँ पहुँचे तो यह सब देखकर दंग रह गये।

मण्डन मिश्र अपने आँगनमें यज्ञ कर रहे थे। आचार्य आकाशमार्गसे उनके आँगनमें पहुँच गये और वहाँ वेदोंपर उन्होंने उनसे शास्त्रार्थ करना प्रारम्भ कर दिया। एक सप्ताह-तक वैदिक वाद-विवाद चलता रहा, फिर मण्डनजी परास्त हो गये और उन्होंने कहा कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? तब शंकराचार्यजीने कहा कि 'वैदिक धर्मकी पताका फहरानेमें आप मेरा साथ दें।' कहा जाता है कि मण्डन मिश्रकी पत्नी भारती बहुत विदुषी थीं और उन्होंने शंकराचार्यजीको परास्त कर दिया था।

मण्डन मिश्रने आचार्य शंकरका साथ दिया। उन्हींके सहयोगसे शंकराचार्यने पूरे भारतमें सभी बौद्ध-जैनियोंको परास्त कर वैदिक धर्मकी पताका फहरायी और वेद-विद्याका प्रचार-प्रसार किया। मण्डन मिश्रकी पत्नीने भी बहुत सहयोग दिया और उन्हींके नामपर शृंगेरी मठके सभी आचार्य आपके नामके साथ 'भारती' शब्दका प्रयोग करते हैं। भारतीदेवीकी भव्य प्रतिमा शृंगेरी मठमें आज भी विद्यमान है।

इन्होंने बादमें संन्यास ले लिया और इनका नाम सुरेश्वराचार्य पड़ गया। जिनके द्वारा 'बृहदारण्यक-वार्तिकसार', 'तैत्तिरीयारण्यक-वार्तिकसार' और दिव्य 'दक्षिणामूर्तिस्तोत्र' आदि अनेक ग्रन्थ निर्मित हुए हैं, जो विद्वत् समाजमें आदरणीय हैं।

भागवताचार्य

भागवताचार्य वेदके संस्कृत-व्याख्याताओंमें सबसे बादके भाष्यकार हैं। रामानन्द सम्प्रदायके प्रचार-प्रसारमें इनका बड़ा योगदान है। इन्होंने चारों वेदोंपर भाष्य लिखा है। ये भगवान्के बड़े भारी भक्त थे, इसलिये इनके वेदभाष्योंमें भी भगवद्भक्तिका प्रवाह सर्वत्र प्रवाहित है। अपने भाष्योंका नाम इन्होंने भक्ति-संस्कारपर आधृत होनेके कारण 'संस्कार-भाष्य' रखा है। इनके भाष्योंमें 'साम-संस्कार-भाष्य' एवं 'यजुः-संस्कार-भाष्य' बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भगवान् रामका नारायण एवं विष्णुके रूपमें वर्णन किया है। वैष्णव-सम्प्रदायमें इनके भाष्योंका बड़ा आदर है।

नारायण

इनका जन्म सन् १३०० के आस-पास है। इन्होंने शाकटायनके द्वारा निर्मित व्याकरणके ग्रन्थ 'उणादिसूत्र' पर 'प्रक्रियासर्वस्व' नामकी टीका लिखी थी। ये वेदोंके विद्वान् थे। इनका भक्ति-ग्रन्थ 'नारायणीयम्' बहुत प्रसिद्ध है, जो 'गीताप्रेस'से प्रकाशित भी है।

वाचस्पति मिश्र

ये वेदके परम तत्त्वज्ञ थे, साथ ही सभी दर्शन-शास्त्रोंका इन्होंने समानरूपसे अध्ययन किया था। गूढतम वैदिक तत्त्वोंके परम दार्शनिक रहस्य इन्हें हस्तामलकवत् थे। ये अहर्निश स्वाध्यायमें लीन रहते थे। इन्होंने वैदिक निबन्धोंके अतिरिक्त सभी दर्शनशास्त्रोंपर 'टीका-ग्रन्थ' लिखा है। इसलिये ये 'द्वादशदर्शन-कानन-पञ्चानन' वेदविद् विद्वान्के रूपमें प्रसिद्ध हुए हैं। इतिहासके अनुसार इनकी पत्नीका नाम भामती था, जो इनकी शांकरभाष्यकी व्याख्याका नाम हो गया और वेदान्त ग्रन्थोंमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है। ये राजा नृगके दरबारके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। इनके गुरुका नाम त्रिलोचन शास्त्री था।

महामहोपाध्याय पं० श्रीविद्याधरजी गौड—काशीकी अप्रतिम वैदिक विभूति

आवागमनशील इस संसारमें प्रतिदिन न जाने कितने लोग आते हैं और चले जाते हैं, किंतु उनमें यदा-कदा ऐसी विभूतियाँ भी जन्म लेती हैं, जिनके उदात्त कर्म समाजके लिये प्रेरणाप्रद बन जाते हैं। काशीके प्रखर वैदिक

वेदमूर्ति महामहोपाध्याय पं० श्रीविद्याधरजी गौड

विद्वान् पं० श्रीविद्याधरजी गौडका भौतिक अवतरण भी कुछ इसी प्रकारका था। काशीके विद्वज्जगत्के देदीप्यमान नक्षत्र पं० श्रीप्रभुदत्तजी गौडके पुत्ररूपमें इनका जन्म पौष कृष्ण १३, शुक्रवारको सन् १८८६ में रोहतक जिलेके पूठी नामक ग्राममें हुआ। पण्डित विद्याधरजीके सम्पूर्ण जातकर्म-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न हुए। अन्नप्राशन-संस्कारके समय जब अपने सामने रखी हुई अनेक वस्तुओंमेंसे इन्होंने पुस्तक उठायी तो सबने समझ लिया कि यह बालक विद्या-व्यसनी होगा।

अध्ययन

काशीमें अध्ययन, पठन-पाठनके अत्यन्त अनुकूल परिवेश तथा प्राक्तन जन्म-संस्कारके कारण इन्होंने अपने यशस्वी पिताके द्वारा वेदविद्या और कर्मकाण्डकी अद्भुत ज्ञानराशि अपनी तीक्ष्ण मेधाशक्ति और कुशाग्रबुद्धिसे अल्पकालमें ही अर्जित कर ली। जो वेदमन्त्र आप एक बार अपने पितृमुखसे सुनते थे, वह आपको तत्काल कण्ठस्थ हो जाता था। पण्डित प्रभुदत्तजी शास्त्रीके यहाँ निरन्तर वेदाध्ययन चलता रहता था। देशके कोने-कोनेसे विद्यार्थी काशी आकर अध्ययन और स्वाध्याय करते रहते थे। श्रौताधानके कारण उनके यहाँ नित्य होमके साथ 'दर्शपौर्णमासेष्टि' का क्रम भी चलता रहता था। इस सुसंस्कृत परिवेशका पं० विद्याधरजीपर अमिट प्रभाव पड़ा। पण्डित विद्याधरजी इतने सौम्य स्वभावके थे कि कभी यह विश्वास ही नहीं होता था कि वे वेदके इतने बड़े मर्मज्ञ हैं। वेदका मूलभाग अष्ट-विकृतियोंके साथ उन्हें कण्ठस्थ तो था ही, अन्य अनेक शास्त्रोंका भी उन्हें गहन ज्ञान था। लोग उन्हें गायत्रीवत् वेदका पारायण करते देखकर आश्चर्य करते थे। वेदके साथ-साथ वेदाङ्गोंपर भी उनका अखण्ड अधिकार था। इतना ही नहीं, धर्मशास्त्र, मीमांसा, साहित्य और व्याकरण आदि शास्त्रोंमें भी उनकी अपरिमित गति थी। अहंकार तो उन्हें स्पर्श भी न कर पाया था। अपनी असाधारण प्रतिभा, पितृभक्ति और विनयशीलताके कारण पं० विद्याधरजीने अपने पिताके कोमल मनको वशीभूत कर लिया था।

अध्यापन

पं० विद्याधरजी १६ वर्षकी अवस्थामें अपने पिताजीके साथ यज्ञमें कलकत्ता गये थे। वहाँ उपस्थित विद्वानोंने इनकी अपूर्व विद्वत्ता और पाण्डित्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वहाँके सम्पन्न व्यक्तियोंने अपने प्रबल आग्रहसे वेद और संस्कृतका अध्यापन करनेके लिये इन्हें विवश किया। फलस्वरूप पं० प्रभुदत्तजीकी आज्ञासे वे कलकत्ताके 'विशुद्धानन्द सरस्वती' विद्यालयमें अध्यापन कार्य करने लगे, परन्तु उनका मन कलकत्ता-जैसे व्यवसायी शहरमें न लगा। वहाँका वातावरण विद्याके अध्ययन-अध्यापनके अनुकूल न था। ये छः मासतक अध्यापन कार्य करके वापस काशी लौट आये। यहाँपर ज्ञानवापीके निकट सत्यनारायण वेद-विद्यालय तथा सरस्वती फाटकके समीप सत्यनारायण वेद-विद्यालयमें कई वर्षोंतक अध्यापन

करनेके बाद आप मीरघाट मुहल्लेमें श्रीरामदयाल चुन्नीलाल काजड़िया संस्कृत पाठशालामें पद-क्रम-जटा-घन आदि अष्ट-विकृतियोंके साथ मूल यजुर्वेदसंहिता पढ़ाने लगे। स्वर्गीय सेठ गौरीशंकरजी गोयनकाने 'श्रीजोखीराम मटरूमल गोयनका संस्कृत महाविद्यालय' की स्थापना कर उन्हें अपने यहाँ वेद-अध्यापक नियुक्त किया। कई वर्षोंतक गोयनका महाविद्यालयमें वाचस्पति, आचार्य, शास्त्री आदिके छात्रोंको अध्यापन करानेके बाद सन् १९३९ में आपने त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र देनेके पश्चात् भी वे विद्यानुरागी सेठ गौरीशंकरजी गोयनका तथा म० म० पं० हरिहरकृपालुजी द्विवेदी आदिके प्रबल आग्रहके कारण आजीवन इस महाविद्यालयसे सम्बद्ध रहे।

विद्वानोंके पारखी महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी निरन्तर यही प्रयत्न करते थे कि सदाचारी और गम्भीर विद्वान् काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे संलग्न हों और अपनी विद्या एवं उज्ज्वल चरित्रसे विद्यार्थियोंको लाभान्वित करें। उन्होंने पं० विद्याधरजीको रणवीर संस्कृत पाठशालामें प्रधानाध्यापक पदपर नियुक्त कर दिया। सन् १९१७ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके धर्म-विज्ञान-विभागमें आपको सर्वप्रथम प्रधानाध्यापक नियुक्त किया गया। धर्म-विज्ञान संकायके विभिन्न पदोंपर रहकर अध्यापन करते हुए इस पदसे १९४० में आपने त्यागपत्र दे दिया। पण्डित विद्याधरजी सन् १९४० से जीवनके अन्तिम क्षणतक काशीके सुप्रसिद्ध संन्यासी संस्कृत कालेज (अपारनाथ मठ)-के प्रधानाचार्य भी रहे।

वेद-प्रचार

आप साक्षात् वेदमूर्ति और वेदमय थे। अध्यापन कार्यके साथ-साथ अपना अधिक समय वेदके प्रचारमें व्यतीत करते थे। आपकी प्रेरणासे महामहोपाध्याय डॉ० गंगानाथ झाने तत्कालीन गवर्नमेंट संस्कृत कालेजमें शुक्लयजुर्वेदके अध्यापन और परीक्षणका कार्य प्रारम्भ किया।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और गोयनका संस्कृत महाविद्यालयमें जहाँ पहले केवल शुक्लयजुर्वेदका ही अध्यापन होता था, आपके प्रयत्नोंसे वहाँ चारों वेदोंका अध्ययन-अध्यापन होने लगा। पण्डित विद्याधरजीसे केवल वेद पढ़नेवाले जिज्ञासु छात्र ही वेदाध्ययन नहीं करते थे, वरन् व्याकरण तथा साहित्यके प्रसिद्ध अध्यापक और विद्वान् भी उपस्थित होकर भाष्यसहित वेदोंका अध्ययन करते थे।

सरल जीवन

भारतीय पण्डितोंकी परम्परागत वेशभूषा—बगलबन्दी (मिरजई), सिरपर रेशमी साफा, मस्तकपर भस्मका त्रिपुण्ड्र अंकित किये रहनेवाले पं० श्रीविद्याधरजी गौड बड़े सीधे-साधे और सज्जन व्यक्ति थे। ईश्वरमें इनकी प्रगाढ निष्ठा और अचल श्रद्धा थी। असत्य-भाषण, मिथ्या-व्यवहार तथा छल-प्रपञ्चको वे घोर पातक समझते थे। जितना विराग उन्हें मिथ्या व्यवहारसे था, उतना ही व्यर्थकी चाटुकारितासे भी था। किसी भी संकटकी परिस्थितिमें वे कभी विचलित नहीं होते थे। महासागरके समान शान्तचित्त और स्थिर रहते थे।

उपाधि

वेदविद्यामें पूर्ण पारंगत होने, वैदिक विद्याका समस्त गूढ मर्म समझने, वैदिक कर्मकाण्डमें सविधि वेदका प्रयोग करने, वेद-कर्मकाण्डके अनेक ग्रन्थोंके निर्माण करने तथा सर्वतोमुखी प्रतिभाकी ख्यातिके कारण भारत सरकारने सन् १९४० ई० में विद्वानोंकी सबसे बड़ी उपाधि महामहोपाध्यायसे सरस्वतीके वरदपुत्र पं० श्रीविद्याधरजी गौडको समलंकृत किया।

लेखन-कार्य

पं० श्रीविद्याधरजी गौड कुशल लेखक भी थे। कर्मकाण्डकी लगभग सभी पद्धतियोंका संशोधन इनके द्वारा हुआ। अनेक पद्धतियोंका प्रणयन भी आपने किया। जिनमें स्मार्त-प्रभु, प्रतिष्ठा-प्रभु, विवाह-पद्धति, उपनयन-पद्धति, वास्तु-शान्ति-पद्धति, शिलान्यास-पद्धति तथा चूड़ाकरण-पद्धति आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। आपकी रचित कुछ पद्धतियाँ तथा कात्यायन-श्रौतसूत्रकी भूमिका काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी वेद-कर्मकाण्ड-सम्बन्धी विविध परीक्षाओंमें पाठ्यग्रन्थके रूपमें स्वीकृत हैं। आपद्वारा रचित कात्यायन श्रौतसूत्र और शुल्बसूत्रकी 'सरला' टीका काफी विद्वत्तापूर्ण मानी जाती है। शतपथ-ब्राह्मण, श्राद्धसार एवं कात्यायन-श्रौतसूत्रकी देवयाज्ञिक-पद्धति आदि अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन तथा 'श्रौतयज्ञ-परिचय' नामक ग्रन्थके निर्माणसे वैदिक जगत् उपकृत है। वस्तुतः अपने पिताजीकी स्मृतिको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये आपने 'स्मार्त-प्रभु' तथा 'प्रतिष्ठा-प्रभु' नामक दो ग्रन्थोंकी रचना की थी।

संस्कृतनिष्ठा

पण्डित विद्याधरजीकी यह भावना थी कि संस्कृत-भाषाके पढ़े बिना हमारे देशका कल्याण नहीं हो सकता।

वे संस्कृत-भाषाके अनुरागीमात्र नहीं थे, वरन् अनन्यभक्त भी थे। संस्कृतमें ही पत्र-व्यवहार करते थे। संस्कृतज्ञोंसे सम्पर्क होनेपर संस्कृतमें ही वार्तालाप और सम्भाषण करते थे।

धर्माचरण

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनु० ६।९२)

'धैर्य, क्षमा, आत्मदमन, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियोंका निग्रह, विवेक, विद्या, सत्य और क्रोध न करना'—ये धर्मके दस लक्षण हैं। पण्डित विद्याधरजीमें ये सभी गुण पूर्णरूपसे विराजमान थे। अतुलित धैर्यके साथ ही आप क्षमाशील भी थे। मन, बुद्धि और हृदय सभी दृष्टियोंसे आप पूर्ण पवित्र थे एवं श्रुति, स्मृति, पुराण आदि धर्मग्रन्थोंमें प्रतिपादित परम्परागत सनातन वैदिक धर्मके परम अनुयायी थे। आप प्रतिदिन प्रातः चार बजे उठकर गङ्गास्नान, संध्या-तर्पण, बाबा विश्वनाथ तथा माँ अन्नपूर्णाका दर्शन करके दुर्गापाठ किया करते थे।

गौ-ब्राह्मण-भक्त

अपने पूज्य पिता पं० प्रभुदत्तजी गौडके समान पं० विद्याधरजी भी बड़े निष्ठावान् और ब्राह्मण-भक्त थे। प्रातः उठते ही गौमाताके दर्शन करते थे। काशीसे बाहर जाना होता तो गौमाताका दर्शन और उसकी प्रदक्षिणा करके ही जाते। गौके समान ब्राह्मणोंके भी वे परम भक्त थे। ब्राह्मण-निन्दा उन्हें कभी सह्य न था। हमेशा अन्न-वस्त्रसे ब्राह्मणोंका सत्कार किया करते थे। ब्राह्मणोंका बहुत आदर करते थे, पर उनमें जातिगत कट्टरता तनिक भी नहीं थी।

विविध कार्यदक्षता

आप शतावधानियोंकी तरह एक ही समयमें अनेक कार्य करते थे। एक ओर वेदका मूल पाठ पढ़ाते तो दूसरी ओर वेदभाष्य पढ़ाते थे। इसी प्रकार एक ओर व्याकरण पढ़ाते तो दूसरी ओर साहित्य आदि पढ़ाते थे। अध्यापनके साथ-साथ ग्रन्थ-लेखन, धर्मशास्त्रीय व्यवस्था और पत्रोत्तर आदिका कार्य भी करते रहते थे।

गोलोकवास

पं० श्रीविद्याधरजी गौडका **'काश्यां मरणान्मुक्तिः'** में पूर्ण विश्वास था। आप जीवन-यात्रा-समाप्तिके एक वर्ष पूर्वसे कुछ शिथिल रहने लगे थे। सन् १९४१को प्रातः १०.३० बजे ५५ वर्षकी अल्पायुमें महामहोपाध्याय पं० श्रीविद्याधरजी गौड अपने सुयोग्य पुत्रों, शिष्यों और भक्तोंको छोड़कर अपने नश्वर पाञ्चभौतिक शरीरको पवित्र काशीमें त्यागकर मुक्त हो गये।

'मनसे, वचनसे और कर्मसे जो पुण्यके अमृतसे भरे हुए सम्पूर्ण त्रिभुवनको अपने उपकारसे तृप्त करते रहते हैं और दूसरोंके अत्यन्त नन्हे-से गुणको भी पर्वतके समान बनाकर हृदयमें प्रसन्न होते रहते हैं'—ऐसे कम लोग ही माँ धरित्रीकी गोदमें अवतरित होते हैं। वेद-विद्याकी अप्रतिम प्रतिभा महामहोपाध्याय पण्डित श्रीविद्याधरजी गौड ऐसे ही लोगोंमेंसे थे, जिन्हें काशी कभी विस्मृत न कर सकेगी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

अर्वाचीन वैदिक अनुसंधाताओं तथा वेदके भाष्यकारोंमें स्वामी दयानन्द सरस्वतीका भी नाम है। स्वामी दयानन्दजी गुजरात प्रान्तके थे। बचपनसे ही आपकी प्रवृत्ति निवृत्ति-मार्गकी ओर रही, इसलिये गृहस्थ-धर्मसे आप सदा दूर ही रहे। यहाँतक कि गृह-त्याग कर आपने नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका आश्रय ग्रहण किया और 'शुद्धचैतन्य' इस नामसे आपकी प्रसिद्धि हुई, फिर प्रारम्भ हुआ आपका देश-भ्रमणका कार्य। अनन्तर संन्यास ग्रहण कर आप 'शुद्धचैतन्य' से 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' इस नामसे जाने गये। मथुरा पहुँचकर आपने प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्दजी महाराजसे विशेष वेद-ज्ञान प्राप्त किया और फिर आपने वेदोंके प्रचार-प्रसारके कार्यका संकल्प लिया। इस कार्यमें इन्हें महान् संघर्ष करना पड़ा। आपने वेदोंपर भाष्य आदिका प्रणयनकर एक नवीन विचारधाराको पुष्ट किया, जो प्राचीन सनातन परम्परासे मेल नहीं खाती। आपने कई बार शास्त्रार्थ किया और यावज्जीवन आप इस पद्धतिके पोषणमें लगे रहे।

अभिनव वेदार्थचिन्तनमें स्वामी करपात्रीजीका योगदान

(डॉ० श्रीरूपनारायणजी पाण्डेय)

वेद भारतीय धर्म एवं संस्कृतिके मूल उत्स हैं। महर्षियोंके द्वारा वेदावबोधके प्रयासमें वेदाङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष)-का प्रणयन किया गया। (वैदिक) आस्तिक दर्शन, विशेषरूपसे मीमांसा एवं वेदान्त, वेदार्थ एवं वेदतत्त्वका गम्भीर विमर्श करते हैं। रामायण, अष्टादशपुराण तथा महाभारतमें भी विविध कथा-प्रसंगोंके माध्यमसे वेदार्थका विस्तार किया गया है।

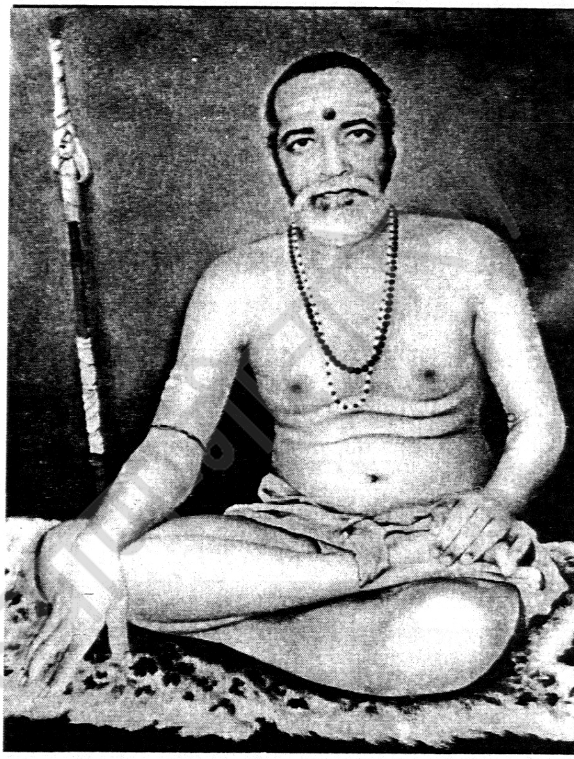

वेदभाष्यकार अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज

वेदके प्राचीन भाष्यकारोंमें स्कन्दस्वामी, उद्गीथ, वेङ्कटमाधव, रावण, आनन्दतीर्थ, आत्मानन्द, सायण, उव्वट, महीधर, आनन्दबोध, हलायुध, अनन्ताचार्य, भट्टभास्कर मिश्र, माधव तथा भरतस्वामी आदि विश्वविश्रुत हैं। वेदार्थचिन्तन तथा वैदिक सिद्धान्तोंके प्रतिपादनमें यास्क, व्यास, जैमिनि, मनु, शबर, शंकराचार्य, मण्डन मिश्र, कुमारिल भट्ट, प्रभाकर, वाचस्पति मिश्र, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य तथा जयन्त भट्ट आदिका नाम सादर संस्मरणीय है। आधुनिक वेदभाष्यकारों तथा संस्कृतेतर वेदानुवादकोंमें स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, रमेशचन्द्र दत्त, रामगोविन्द त्रिवेदी, कोल्हट, पटवर्धन सिद्धेश्वर शास्त्री, जयदेव विद्यालंकार, डॉ० सत्यप्रकाश, कपालशास्त्री, श्रीराम शर्मा, ज्वालाप्रसाद मिश्र, वीरेन्द्र शास्त्री तथा क्षेमकरण त्रिवेदी आदिका नाम उल्लेखनीय है। पाश्चात्य वेदज्ञों एवं अनुवादकोंमें फ्रीडिशरोजेन, मैक्समूलर, विल्सन, ग्रासमैन, लुडविग, ग्रिफिथ, ओल्डेनवर्ग, वेबर, कीथ, राथ, ह्विटनी तथा स्टेवेन्सन आदि प्रमुख हैं। आधुनिक वेदार्थचिन्तकोंमें पं० मधुसूदन ओझा, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, अरविन्द, वासुदेव शरण अग्रवाल, सूर्यकान्त तथा रघुनन्दन शर्मा आदि समादरणीय हैं।

स्वामी करपात्रीजी आधुनिक युगके उन वेदार्थचिन्तकोंमें अग्रगण्य हैं, जिन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों तथा भाष्यकारोंकी सुचिन्तित वेदार्थपरम्पराका दृढ़ताके साथ अनुवर्तन करते हुए प्राच्य एवं पाश्चात्य वेदज्ञोंके मतोंकी सम्यक् समालोचना की है तथा भारतीय मान्य वेदार्थपरम्परामें तदनुकूल अभिनव अर्थोंकी सर्जना की है। स्वामीजी(सन् १९०७—१९८२ ई०)-द्वारा प्रणीत वेदविषयक ग्रन्थोंमें 'वेदका स्वरूप और प्रामाण्य' (दो भागोंमें), 'वेदप्रामाण्य मीमांसा', 'वेदस्वरूपविमर्श', 'वेदार्थपारिजात' (भागद्वय) तथा 'वाजसनेयिमाध्यन्दिन-शुक्लयजुर्वेदसंहिता' (करपात्रभाष्य-समन्वित—दस भागोंमें) मुख्य हैं। ऋग्वेदसंहिता (प्रथम मण्डल)-का भाष्य अभी अप्रकाशित है। वैदिक चिन्तन तथा वेदमूलक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन आपके अन्य प्रमुख ग्रन्थों—'मार्क्सवाद और रामराज्य', 'रामायणमीमांसा', 'चातुर्वर्ण्यसंस्कृतिविमर्श' तथा 'भक्तिसुधा' आदिमें उपलब्ध होता है।

वेदभाष्यके क्षेत्रमें युगान्तर उपस्थित करनेवाले स्वामी दयानन्द सरस्वतीने ब्राह्मण-ग्रन्थोंके वेदत्वका खण्डन किया तथा सनातन संस्कृतिके अङ्गभूत मूर्तिपूजा एवं

श्राद्ध-तर्पण आदिमें अविश्वास प्रदर्शित किया। उन्होंने आचार्य सायण, महीधर तथा उव्वट आदिके विपरीत अग्नि, अदिति, इन्द्र, रुद्र एवं विष्णु आदिका यास्कके निरुक्तके आधारपर नूतन यौगिक अर्थ किया और परम्पराद्वारा प्रमाणित याज्ञिक अर्थकी घोर उपेक्षा की।

पाश्चात्त्य वेदज्ञोंने भाषाशास्त्रादिके आधारपर न केवल सनातन वेदार्थ-परम्पराका उपहास किया, अपितु आर्य-अनार्य-सिद्धान्तकी परिकल्पना करके 'वेदमन्त्रोंके द्रष्टा ऋषि भारतके मूल निवासी नहीं हैं'—इस सिद्धान्तकी दृढ़ प्रतिष्ठापना की। वेदमन्त्रोंके द्रष्टा ऋषियोंको उनका रचयिता मानकर मीमांसादि दर्शनोंके दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित वेदोंके नित्यत्व तथा अपौरुषेयत्वका खण्डन किया।

पूज्यपाद स्वामी करपात्रीजीने स्वामी दयानन्द सरस्वतीका गम्भीरतापूर्वक खण्डन करते हुए ब्राह्मणग्रन्थोंके वेदत्वको सुप्रतिपादित किया तथा मूर्तिपूजा एवं श्राद्ध-तर्पण आदिको वैदिक सिद्धान्तोंके अनुरूप सिद्ध किया। स्वामी दयानन्द सरस्वतीके नूतन वेदार्थको सर्वथा अस्वीकृत करते हुए सनातन परम्पराके अनुरूप वेदार्थको अङ्गीकृत किया तथा अपनी विलक्षण प्रतिभाके बलपर वेदमन्त्रोंके नूतन आध्यात्मिक एवं आधिदैविक अर्थोंको स्पष्ट किया। स्वामीजीका यह सुचिन्तित मत है कि यदि लौकिक वाक्योंके अनेक अर्थ हो सकते हैं, तो अलौकिक वेदवाक्योंके अनेक अर्थ क्यों नहीं? हाँ, वेदमन्त्रोंके अर्थप्रतिपादनमें उनके ऋषि, देवता तथा सूत्रानुसारी विनियोगादिकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। स्वामीजीके विचार मन्तव्य हैं—

'त एते वक्तुरभिप्रायवशादर्थान्यथात्वमपि भजन्ते मन्त्राः। न ह्येतेष्वर्थेषु इयत्तावधारणमस्ति, महार्था ह्येते दुष्परिज्ञानाश्च। यथाश्वारोहवैशेष्यात् अश्वः साधु साधुतरं च वहति, एवमेवेमे वक्तृवैशेष्यात् साधून् साधुतरांश्चार्थान् स्रवन्ति। तत्रैवं सति लक्षणोद्देश्यमात्रमेवैतस्मिन् शास्त्रे निर्वचनमेकैकस्य क्रियते। क्वचिच्चाध्यात्माधिदेवाधियज्ञोपदर्शनार्थम्। तस्मादेतेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन् अधिदेवाध्यात्माधियज्ञाश्रयाः सर्व एव ते योज्याः। नात्रापराधोऽस्ति। एकेन विदुषा 'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्' इति श्रीमद्भागवतीयाद्यपद्यस्याष्टोत्तरशतसंख्याकानि व्याख्यानानि कृतानि।

'यदा स्थितिरेतादृशी पौरुषेयेषु वाक्येषु तदा परमेश्वरीयनित्यविज्ञानमयानि वैदिकमन्त्रब्राह्मणवाक्यानि बह्वर्थानि भवेयुरित्यत्र नास्ति मनागपि विप्रतिपत्तिः। तथापि प्रामाणिकानि तानि व्याख्यानानि तात्पर्यानुगुणानि उपपत्तिमन्ति भवेयुस्तदैव ग्राह्याणि नान्यथा। तत्रार्षविनियोगवशादर्थभेदो युक्तः। विनियोगवशादुपक्रमादिलिङ्गवशाच्च यत्र मुख्यं तात्पर्यं निश्चीयते तदविरोधेनैवेतराणि व्याख्यानानि ग्राह्याणि। इतरथा ग्रहणे परस्परविरुद्धार्थवादित्वेनाप्रामाण्यमेव स्याद् वेदानाम्।'

(शुक्लयजुर्वेदसंहिता १। १, करपात्रभाष्य)

यज्ञप्रधान शुक्लयजुर्वेदके मन्त्रोंके याज्ञिक अर्थको पुष्ट करते हुए उसके अविरुद्ध उनके रमणीय आध्यात्मिक अर्थको प्रकाशित करके स्वामीजीने वेदार्थ-प्रकाशनके क्षेत्रमें अद्भुत युगान्तकारी क्रान्ति की है। वेदभाष्यभूमिका 'वेदार्थपारिजात' के साथ शुक्लयजुर्वेदके करपात्रभाष्यके प्रकाशनसे यास्क, शौनक, कात्यायन, बौधायन, आश्वलायन, शांखायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ, भारद्वाज, वैखानस, वाधूल, जैमिनि तथा कौशिक आदि ऋषियों तथा आचार्यों एवं स्कन्दस्वामी, महाभास्कर मिश्र, सायण और उव्वट आदि भाष्यकारोंकी अर्थ-परम्परा पल्लवित एवं पुष्पित हो गयी, आधुनिक प्राच्य एवं पाश्चात्त्य वेदज्ञोंके मतोंकी समीक्षा हो गयी तथा उनके द्वारा भारतीय धर्म एवं संस्कृतिकी मान्यताओंपर किये गये आक्षेपका यथेष्ट विखण्डन हो गया। इस प्रकार स्वामी करपात्रीजीके द्वारा प्रस्तुत अभिनव वेदार्थचिन्तन सनातन वैदिक धर्म एवं संस्कृतिकी विजयकी उद्घोषणा करता है तथा परवर्ती विद्वानोंको परम्पराके अविरुद्ध अभिनव अर्थोंके चिन्तनकी सत्प्रेरणा प्रदान करता है।

स्वामीजीने याज्ञिक अर्थके अनुरूप किस प्रकार प्रत्येकके आध्यात्मिक आदि अर्थोंकी उद्भावना की है? इसे एक उदाहरणके द्वारा उपस्थित करना अनपेक्षित न होगा। शुक्लयजुर्वेद, प्रथम अध्यायके अन्तिम मन्त्र

'**सवितुस्त्वा०**' का याज्ञिक अर्थ निम्नलिखित है—

'हे आज्य! प्रेरक सूर्यदेवताकी प्रेरणासे मैं छिद्ररहित पवित्र तथा सूर्य-किरणोंके द्वारा तुम्हें शुद्ध कर रहा हूँ। उसी तरह हे प्रोक्षणी जल! यज्ञ-निवासभूत सूर्यकी किरणोंसे और छिद्ररहित पवित्रसे मैं तुम्हें प्रेरक देवताकी प्रेरणाके कारण शुद्ध कर रहा हूँ। हे आज्य! तुम शरीरकी कान्तिको देनेवाले तेज हो, प्रकाशक हो तथा अविनश्वर हो। उसी तरह हे आज्य! तुम समस्त देवताओंके स्थान हो, सबको झुकानेवाले हो और देवताओंके द्वारा तिरस्कार न करनेके कारण तुम उनके प्रिय हो, तुम उनके यागके साधन हो, इसलिये मैं तुम्हारा ग्रहण करता हूँ।'

इसी मन्त्रका आध्यात्मिक अर्थ कितना अभिराम है। देखिये—'भगवान् वेद आत्माको सम्बोधित कर रहे हैं कि हे जीव! प्रपञ्चके उत्पादक स्वप्रकाश परमेश्वरकी आज्ञामें रहनेवाला मैं तुम्हें संशय-विपर्ययादि दोषोंसे रहित पवित्र ज्ञानसे उत्कृष्टतया पावन कर रहा हूँ। अर्थात् स्वप्रकाशज्ञान सूर्यकी रश्मियोंसे अर्थात् तदनुरूप विचारोंके द्वारा समस्त उपाधियोंका निरसन कर परिशोधन करते हुए तुझमें ब्रह्मतादात्म्य प्राप्त करनेकी योग्यता पैदा कर रहा हूँ। हे जीव! तुम परमात्माका आलम्बन करनेवाले तेजके स्वरूप हो। तुम दीप्तिमान्-ज्योतिष्मान् हो, तुम अमृत हो, अर्थात् देह, इन्द्रिय आदि जो मर्त्य (नश्वर) हैं, उनसे भिन्न हो। तुम धाम हो अर्थात् जिसमें चित्तकी वृत्तिको स्थापित किया जाता है, उस परब्रह्मके स्वरूप अर्थात् सर्वाश्रय-स्वरूप हो। '**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥**'—जहाँ पहुँचकर जीव वापस नहीं आता है, वही मेरा परम धाम है (गीता १५। ६), ऐसा भगवद्वचन है। तुम नाम हो अर्थात् समस्त प्राणियोंको जो अपने प्रति झुका लेता है, उसे नाम कहते हैं। अभिप्राय यह कि सर्वाधिष्ठान तुम हो। इन्द्रिय, मन, बुद्धिरूप देवताओं और इन्द्रादि ज्योतियोंके परम प्रेमास्पद ब्रह्म तुम्हीं हो। '**महद् भयं वज्रमुद्यतम्**', '**भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः**' इत्यादि श्रुतियोंने तुम्हें अनाधृष्ट अर्थात् अप्रधृष्य बताया है। देवता भी जिसका यजन करते हैं, वह देव-यजन तुम ही हो' (शुक्लयजु० १। ३१, करपात्रभाष्य, हिन्दी अनुवाद, प्रथम खण्ड)।

इस प्रकार अभिनव वेदार्थचिन्तनमें स्वामी करपात्रीजीका योगदान अतीव विलक्षण है तथा चिरकालतक यह सनातन वेदार्थ-परम्पराके अनुयायियोंका प्रेरक रहेगा। इसके स्वाध्यायसे वेदार्थके गूढ रहस्योंका निश्चित उद्घाटन होगा। वेबर, मैक्समूलर तथा याकोबी आदि पाश्चात्त्य पण्डितोंके मतोंकी युक्तियुक्त समीक्षा करते हुए स्वामीजीने सप्रमाण पुष्ट किया है कि आर्य नामकी कोई जाति नहीं है। वेदमन्त्रोंके द्रष्टा ऋषि भारतके ही मूल निवासी हैं। मानवकी प्रथम सृष्टि भारतमें हुई है। हम भारतीय अनादिकालसे भारतके निवासी हैं। वेद नित्य तथा अपौरुषेय हैं। भारतमें वैदिक स्वाध्यायकी परम्परा कभी विच्छिन्न नहीं हुई। ऋतम्भरा प्रज्ञासे सम्पन्न सत्यवादी ऋषियोंने वेदमन्त्रोंके किसी कर्ताको स्मरण नहीं किया है। ऐसी स्थितिमें ऋषि युगारम्भमें वेदमन्त्रोंके द्रष्टा हैं, कर्ता नहीं हैं। वेद तो परमात्माके निःश्वासभूत ही हैं। जिस प्रकार प्रत्येक प्राणीमें निःश्वास सहजरूपमें विद्यमान रहता है, उसी प्रकार परमात्मासे वेदोंकी रचना ई०पू० ३००० से ई०पू० ६००० के मध्य हुई होगी। आर्योंके आदि देश, वेद-रचना-काल तथा वेदोंके प्रतिपाद्यके विषयमें पाश्चात्त्य वेदज्ञ पण्डितोंकी मान्यताएँ किसी भी रूपमें अङ्गीकार्य नहीं हैं।

आधुनिक भारतीय वेदभाष्यकारोंके मतके संदर्भमें स्वामीजीका यह स्पष्ट मत है कि संहिताभागके समान ब्राह्मणभाग भी वेदोंके अपरिहार्य अंश हैं। मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनोंकी वेदसंज्ञा है। वेद धर्म तथा ब्रह्मके प्रतिपादक हैं। वेदोंकी श्रौतसूत्रानुसारी व्याख्या की जानी चाहिये तथा उसके अविरुद्ध अन्य आध्यात्मिक आदि अर्थोंको उद्भावित करना चाहिये। आधुनिक विचारधाराके अनुरूप वेदमन्त्रोंका मनमानी अर्थ करना सर्वथा असंगत है। स्वामीजीके इस महनीय योगदान-हेतु सनातन वेदार्थचिन्तन-परम्परा उनका चिरकृतज्ञ रहेगी।